अंक ४५ नई दिल्ली, नवम्बर २०१३ [निजी प्रसार के लिए]

लोक पुलिस

मासिक पत्रिका

सी.एच.आर.आई.

जनतांत्रिक पुलिस के लिए

'सर्वोत्तम अवसर शायद कभी न प्राप्त हो, लेकिन शुरुआत तो करनी होगी'

पूर्व डी.जी.पी. श्री रमेश शर्मा

मध्य प्रदेश के पूर्व डी.जी.पी. श्री रमेश शर्मा से पुलिसिंग के विभिन्न मुद्दों पर ज़ीनत मलिक द्वारा लिए गये साक्षात्कार के विशिष्ट अंश आपके लिए प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

सर, कृपया अपने कार्यकाल के दौरान अपने दायित्वों के निर्वाह करते समय की गई नई कोशिशों के बारे में बतायें जिसे दूसरे स्थानों पर भी अपनाया जा सके?

मेरा मानना रहा है कि पुलिस बल का जो भाग सबसे अधिक जन संपर्क में रहता है वह बल का कम से कम ७० प्रतिशत है और अगर उनमें सुधार आ सके तो बल का स्वरूप बदल सकता है। इसी विचार से मैंने उनके प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण स्कूलों के निर्माण को आवश्यक समझा और २००८ में ५०३ करोड़ का प्रस्ताव बना कर १३वें वित्त आयोग को भेज दिया। हांलाकि, आयोग ने इसे काफ़ी पसंद किया लेकिन बजट की राशि को कम करने को कहा और अंततः १८० करोड़ के बजट को २००६ में मंजूर कर लिया। इस प्रस्ताव के उद्देश्य में मैंने सिपाहियों के प्रशिक्षण के लिए ६ ट्रेनिंग स्कूलों की स्थापना के बारे में लिखा था जिसकी स्थापना इंदौर, ग्वालियर, पंचमढ़ी, रिवा, सागर और भोपाल में होनी थी। इंदौर में इसके अंतर्गत एक आधुनिक संस्थान बन कर तैयार हो भी चुका है। मेरे अनुसार अपने सेवा काल के दौरान मेरी ओर से अगर बल को कोई योगदान रहा है तो वह इसी प्रस्ताव को पास कराकर प्रशिक्षण संस्थानों का निर्माण है और मैं इससे बहुत संतुष्ट हुँ। मुझे आशा है कि यदि हम इस ७० प्रतिशत पुलिस बल को बढ़िया प्रशिक्षण देकर बल के मानव संसाधनों में बढ़ोतरी कर सकें तो सबको लाभ होगा क्योंकि यह वर्तमान समय की आवश्यकता हो गई है और अब हमारे पास सिपाही भी पढ़े–लिखे आ रहे हैं।

क्या आपके विचार में थाना स्तर के पुलिसकर्मियों, विशेषकर कांस्टेबुलरी का प्रशिक्षण पाठ्यक्रम उन्हें वर्तमान समय की पुलिसिंग आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार करने के लिए उपर्युक्त है या आप कुछ और सुझाव देना चाहेंगे?

हमारे यहां प्रशिक्षण बहुत लंबी अवधि तक सबसे अधिक उपेक्षित रहा है जबकि अब इस ओर प्रयत्न किये जाने लगे हैं। जब मैं ए.डी.जी. ट्रेनिंग बना तब मुझे यह महसूस हुआ कि शायद मुझे हमेशा से ही यहां होना चाहिए था। मैंने समीप से अवलोकन करने पर प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में कुछ बदलाव होना आवश्यक समझा और इसके बाद ऐसा हुआ कि राष्ट्रीय पुलिस अकदमी से ए.डी.जी. प्रशिक्षण के नाम बुलावा भी आ गया ताकि कांस्टेबुलरी स्तर के पाठ्यक्रमों को दोहराने पर चर्चा की जा सके। इस परिचर्चा में मैंने अपने विचार और सुझाव खुलकर रखे और पाठ्यक्रम में कांस्टेबुलरी के लिए संवाद कौशल पर प्रशिक्षण को सम्मिलित करवाया। क्योंकि, मेरे विचार में, एक कांस्टेबल का संवाद कौशल इतना विकसित होना चाहिए कि वह भीड़ को अनियंत्रित और उग्र होने से रोक सके या अगर ऐसा करना सम्भव न हो तो उन्हें इतनी देर सांत्वना देकर, रोक कर रखे जितनी देर में भीड़ को नियंत्रित करने के लिए उचित प्रबंध हो सके। इसके अलावा बेहतर संवाद कौशल की सहायता से जनता के साथ मज़बूत सम्बन्ध बन सकता है। साथ ही मैंने एक और नई चीज़ सम्मिलित करवाई जिसमें कांस्टेबुलरी को विभिन्न समाचार क्लीपिंग्स दिखाई जा सके जहां पुलिस ने ग़ैर कानूनी कार्य किया है।

इसका समावेश और प्रयोग तो मैं अपने कार्यकाल में अकादमी में भी करवाता था और इसके लिए बहुत अच्छी संख्या में हमने क्लीपिंग्स एकत्रित कर रखी थीं जिसमें पुलिस प्रताड़ना के भागों को दिखाया करता था। जब प्रशिक्षणार्थी अपनी आंखों से गलतियों को देखते थे, उनमें अपनी कार्यशैली का कानूनी रूप से विश्लेषण करने की क्षमता पैदा होती थी। मेरे अनुसार, इस प्रकार बंद कमरे के किताबी पाठ्यक्रमों के अलावा व्यवाहारिकता से परिचय कराना प्रशिक्षार्थियों के लिए अच्छी पद्धति है। इसके अलावा, कांस्टेबुलरी स्तर के पुलिसकर्मी को भी पर्यवेक्षण में निपुणता के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए जिससे कि वह विभिन्न आपराधों से सम्बन्धित मामलों में व्यक्तियों के हाव–भाव से उचित निष्कर्ष पर पहुंचने में सहायता ले सकें। कांस्टेबल को बीट ड्यूटी करते समय सावधान रहना चाहिए और अगर कोई उनसे छुपने की कोशिश कर रहा है या कोई किसी से भयभीत है तब, वह अपनी पर्यवेक्षण क्षमता से इसका पता लगा सकते हैं। *शरलक होम्स ने कहा था – "मैं उससे अधिक नहीं देखता जितना तुम देखते हो लेकिन मैंने स्वंय को पर्यवेक्षण में प्रशिक्षित कर लिया है"* और मैं इस वक्तव्य से सहमत हुँ।

पुलिस अपने कानूनी दायित्वों को ठीक प्रकार से न निभाने का एक प्रमुख कारण विभिन्न प्रकार के हस्तक्षेपों और दबावों को बतलाती है। क्या वास्तव में ही पुलिस को इन दबावों के अधीन काम करना पड़ता है?

इसमें कोई संदेह नहीं कि पुलिस को कई प्रकार के दबावों के अधीन काम करना पड़ता है चाहे वह कांस्टेबल हो या राज्य का डी.जी.पी.। अगर एक कांस्टेबल इस परिस्थिति में है, इसी परिस्थिति में डी.जी.पी. भी हो सकता है क्योंकि आपको सर्वोत्तम अवसर शायद कभी प्राप्त न हो। आप अपनी ओर से विपरीत परिस्थितियों में कानून का पालन करें इसकी कोशिश होनी चाहिए। हमारे पास कई कारण हो सकते हैं बेईमान होने के लिए लेकिन हमें सही शुरूआत करनी होगी। पुलिस भी समाज का ही भाग है लेकिन उस पर समाज में गैरकानूनी गतिविधियों से स्वंय को अलग रखने और उसे रोकने का दायित्व है। वह किसी भी परिस्थिति में समाज की बुराईयों को अपनी गलतियों के लिए ज़िम्मेदार नहीं ठहरा सकती है।

'जांच' करना 'कानून व्यवस्था' संभालने से बिल्कुल भिन्न है और प्रायः यह देखा गया है कि कानून–व्यवस्था को संभालने के कारण केसों के अनुसंधान पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसे दूर करने के क्या उपाय हो सकते हैं?

वास्तव में, इसका केवल एक ही जवाब है कि इस संदर्भ में *प्रकाश सिंह के केस* में दिये गये उच्चतम न्यायालय के निर्देश के अनुसार अनुसंधान और कानून–व्यवस्था की पुलिस को अलग किया जाए। क्योंकि, ऐसा न होने के कारण केसों की जांच के लिए पुलिस नहीं उपलब्ध हो पाती है और अपराधी खुले घूमते रहते हैं। अगर केसों का उचित रूप से अन्वेंषण किया जाएगा तो इसका साकारात्मक परिणाम कानून–व्यवस्था पर भी पड़ेगा। कई बार एक अपराध के लिए पकड़े न जाने के कारण वही आरोपी दूसरा और तीसरा अपराध भी करते हैं।

पुलिस अन्वेंषण के समय तुरंत परिणाम दिखलाने के दबाव में थर्ड डिग्री का उपयोग भी करती है इसे किस प्रकार कम किया जा सकता है? क्या यह किसी पस्थिति में न्यायसंगत हो सकता है?

नहीं किसी भी स्थिति में थर्ड डिग्री को सही नहीं ठहराया जा सकता

शेष पृष्ठ ३ पर .....

बूझो और जीतो–२३

प्रिय पाठकों,
इस खण्ड में हम विभिन्न आपराधिक कानूनों से प्रश्न पूछ रहे हैं। हमें आशा है कि यह लघु प्रश्नोत्तरी आपके ज्ञान को बढ़ाने का एक अच्छा साधन सिद्ध है। इसलिए, अधिक संख्या में इस प्रतिस्पर्धा में भाग लें।

इस बार भी पहले की ही तरह आपसे केवल ५ प्रश्न पूछे जाएंगे और पांचों के सही उत्तर मिलने पर लकी ड्रा से विजेताओं का नाम निकाला जाएगा। यदि किसी के ५ से कम प्रश्नों के उत्तर सही हों तब उसे विजेता घोषित नहीं किया जा सकता है। इस कारण ऐसा सम्भव है कि किसी अंक में कोई भी विजेता न हो।

किसी अंक में पूछे गए प्रश्नों के उत्तर तीसरे महीने के अंक में प्रकाशित किये जाते हैं ताकि पाठकों को प्रविष्टियाँ भेजने के लिए पर्याप्त समय मिले। २ सही जवाब भेजने वालों को ५०० रूपये पुरस्कार के रूप में डिमाण्ड ड्राफ्ट या चेक द्वारा भेजा जाता है और इन विजेताओं के नाम पत्रिका में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

इस अंक के सवाल निम्नलिखित हैं:–

१. आपराधिक सबूतों को मिटाने के लिए क्या और किस प्रावधान के अंतर्गत दण्ड दिया जा सकता है?
२. धोखेबाज़ी के लिए क्या दण्ड दिया जा सकता है?
३. एक चार वर्ष के बच्चे को पैसे चुराने के लिए क्या दण्ड दिया जा सकता है?
४. पीड़ित मुआवज़ा क्या है?
५. क्या पुलिस के समक्ष अपराध कबूली अदालत में मान्य है? इस सम्बन्ध में क्या प्रावधान है?

बूझो और जीतो – २० का परिणाम

अगस्त २०१३ अंक के परिणाम को इस अंक में प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें पूछे गए प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार हैं:–

१. नहीं, यौन अपराधों से बच्चों की सुरक्षा अधिनियम २०१२ की धारा २५ के प्रतिबंध के अनुसार मजिस्ट्रेट के समक्ष पीड़ित बच्चे के बयान दर्ज करने के समय आरोपी के वकील को उपस्थित रहने की आज्ञा नहीं है।
२. भारतीय दण्ड संहिता की धारा ३७० के अनुसार एक नाबालिग की तस्करी करने वाले को कम से कम १० वर्षों से आजीवन कारागार तथा जुर्माना चुकाने का दण्ड दिया जा सकता है।
३. भारतीय दण्ड संहिता की धारा ३७६ (२) अनुसार थाने में शिकायत दर्ज कराने आई महिला के साथ बलात्कार करने वाले पुलिसकर्मी को १० वर्षों से लेकर आजीवन कारागार तथा जुर्माना चुकाने का दण्ड दिया जा सकता है।
४. यौन अपराधों से बच्चों की सुरक्षा अधिनियम २०१२ की धारा २२ के अंतर्गत किसी व्यस्क द्वारा बच्चे का यौन शोषण करने का झूठा आरोप लगाने वाले को ६ महीने तक के कारावास या जुर्माना चुकाने का दण्ड या दोनों ही दिया जा सकता है।
५. यौन अपराधों से बच्चों की सुरक्षा अधिनियम २०१२ की धारा १५ के अंतर्गत बच्चों से सम्बन्धित व्यावसायिक उद्देश्य से अश्लील सामग्री रखने वाले व्यक्ति को ३ वर्षों तक के कारावास या जुमाना चुकाने या दोनों का ही दण्ड दिया जा सकता है।

विजेता

इस बार हमें किसी भी सहभागी के प्रविष्टि में सभी प्रश्नों के सही उत्तर नहीं प्राप्त हुए।

अपने पत्र हमें निम्न पते पर भेजें या या ईमेल करें–

ज़ीनत मलिक
प्रधान संपादक, *लोक पुलिस*
कॉमनवेल्थ ह्यूमन राईट्स इनिशिएटिव
(सी.एच.आर.आई.)
बी–११७, दूसरा तल, सर्वोदय एन्क्लेव,
नई दिल्ली-११००१७, भारत
फोन : ९१ ११४३१२०८००, ४३१८०२२५
फैक्स: ९१ ११ २६८६४६८८
ई–मेल : zeenatmalick@gmail.com
वेबसाईट : http//www.humanrightsinitiative.org

सॉफ्ट स्किल्स्-नेतृत्व क्षमता तथा टीम निर्माण भाग-२

पिछले अंक में हमने चर्चा की थी कि किस प्रकार सॉफ्ट स्किल्स के अंतर्गत नेतृत्व क्षमता को एक अति–महत्वपूर्ण स्किल माना जाता है। इस अंक में हम देखेगें कि किस प्रकार टीम निर्माण या कार्य–समूह के निर्माण तथा उसके कार्य को नेतृत्वकर्ता प्रभावित कर सकते हैं तथा किस प्रकार नेतृत्वकर्ता व्यक्ति अपने आस–पास उपलब्ध व्यक्तियों को एक समूह भावनाओं से बांधकर निर्धारित दिशा में कार्य संपादित करवाने में सक्षम सिद्ध हो सकता है।

जब किसी कार्य समूह के पास एक निर्धारित लक्ष्य होता है तथा उस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु उस समूह के सभी व्यक्ति एक–जूट होकर परस्पर सहयोग से कार्य संपादित करते हैं तो उस कार्य पद्धति को टीम कार्य कहा जा सकता है। टीम के चार प्रमुख कार्य उद्देश्य होते हैं :–

१. किसी कार्य हेतु लक्ष्य निर्धारित करना तथा उसको प्राप्त करने के महत्व को स्थापित करना।

२. टीम के प्रत्येक सदस्य की क्षमता के अनुरूप कार्य का विश्लेषण करते हुए निर्धारित कार्य से संबंधित जिम्मेदारियों को बांटना।

३. टीम के कार्य का विश्लेषण करना तथा कार्य की प्रकिया, कार्य को करने के सिद्धांत, कार्य से संबंधित प्रमुख निर्णय लेना तथा आपसी संवाद टीम के सदस्यों के बीच निर्मित करना।

४. टीम के समस्त सदस्यों के बीच आपसी समन्वय तथा रिश्तों का निर्धारण करना।

उपरोक्त कार्य हेतु टीम के द्वारा प्रभावी निर्माण व कार्य किया जाना तभी संभव है जब टीम का नेतृत्व करने वाला व्यक्ति इन उद्देश्यों को समझे, कार्य करने के लक्ष्य की पहचान रखे तथा टीम के प्रत्येक सदस्य को व्यक्तिगत रूप से जानते परखते हुए उनकी क्षमताओं का विश्लेषण कर पाये तथा उसका उपयोग निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु उसके द्वारा करवाया जाये।

टीम के माध्यम से प्रभावी कार्य संपादन तभी हो सकता है जब टीम के नेतृत्वकर्ता व्यक्ति भी टीम के कार्य निर्धारण, लक्ष्य निर्धारण तथा कार्य संपादन में रूचि लें। प्रभावी टीम निर्माण हेतु निम्नलिखित सात तत्व अत्यधिक आवश्यक हैं :–

१. समझदारी, आपसी समन्वय तथा प्रमुख कार्य उद्देश्यों की सटिक पहचान– टीम के सदस्यों को अपने कार्य के प्रमुख उद्देश्य की समझ होनी चाहिए तथा उस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु पूर्णता कटिबद्ध होना चाहिए।

२. खुला संवाद– टीम के सदस्यों को आपस में खुला संवाद स्थापित करना चाहिए उन्हें एक दूसरे के समक्ष अपने विचार, सुझाव, अनुभूतियां तथा संवेदनाएं प्रकट करने में किसी भी प्रकार की झिझक अथवा शर्म न महसूस हो तथा आपस में व्यस्क तथा बुद्धिमान व्यक्तियों के रूप में वह संवाद स्थापित करने में सक्षम हों।

३. आपसी विश्वास – टीम के सदस्यों के मध्य आपसी विश्वास बना रहना चाहिए तथा उन्हें एक समूह के रूप में यह स्पष्ट होना चाहिए कि उनके समूह अथवा टीम के प्रत्येक सदस्य को एक दूसरे पर पूर्ण विश्वास है।

४. आपसी सहयोग – टीम के समस्त सदस्यों के मध्य आपसी सहयोग की भावना सबसे अधिक प्रबल होनी चाहिए। आपसी सहयोग की भावना 'आपसी विश्वास' तथा 'खुला संवाद' होने पर ही संभव होती है अतः आपसी सहयोग से ही निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति संभव है जिसमें व्यक्ति के निजी स्वार्थों का कोई स्थान नहीं होता है।

५. आपसी अलगाव का प्रभावी प्रबंधन – टीम के सदस्यों में यदि आपसी मन – मुटाव उभरता है तो उसे दूर करने के उपाय टीम में ही निश्चित हों ताकि टीम का प्रत्येक सदस्य आपस में लक्ष्य की प्राप्ति हेतु निजी मतभेदों को दूर कर लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कार्य कर सकें।

६. टीम के सदस्यों के बीच समानता तथा उपयुक्त कार्य आवंटन – टीम के सदस्यों के बीच समानता का व्यवहार होना चाहिए तथा उनकी क्षमता के अनुरूप कार्य आवंटन होना चाहिए। जिस व्यक्ति के पास जिस विधा में अधिक गुण हों उस विधा का कार्य उस व्यक्ति को दिया जाना चाहिए तथा टीम के सदस्यों के बीच समानता की भावना रखते हुए उनको बेहतर कार्य करने के लिए प्रेरित करना चाहिए ।

७. टीम के सदस्यों के बीच विविद्धता तथा कार्य क्षमताओं की भिन्नता टीम को अधिक उपयोगी बनाती है – टीम के सदस्यों में यदि भिन्न–भिन्न प्रकार के गुण हों, इन भिन्नताओं का उपयोग कार्य संपादन के लिए अधिक प्रभावी सिद्ध हो सकता है क्योंकि टीम की भिन्नता विविध कार्यों को प्रभावी रूप से संपादित करने हेतु कारगर सिद्ध होती है।

प्रभावी टीम के प्रमुख लक्षण

प्रभावी टीम के पांच प्रमुख लक्षण होते हैं

१. टीम सदस्य – प्रभावी टीम योग्य व्यक्तियों को जोड़े जाने से बने समूह से निर्मित होती है। यह वह व्यक्ति होते हैं जो अनुभवी हों जिनमें समस्याओं को सुलझाने की क्षमता हो ओर जो कार्य के प्रति लगनशील हों।

२. टीम के अर्न्तसंबंध – प्रभावी टीम के लिए टीम के समस्त सदस्यों के मध्य आपसी अर्न्तसंबंध बहुत अच्छे होने चाहिए तथा यह सदस्य एक दूसरे से विचार विमर्श कर कार्य संपादित कर सके। टीम में परस्पर सकारात्मक भावनाओ का संचार हो तथा सभी सदस्य एक दूसरे के गुण दोष स्वीकार कर सकें यह अच्छे अर्न्तसंबंधों के लिए आवश्यक है।

३. समस्याओं को सुलझाने की क्षमता – टीम के सदस्यो में समस्या को पहचानने की क्षमता होनी चाहिए उसके उपरांत उसे सुलझाने हेतु योजना बनाकर सफल कियान्वयन करने की क्षमता भी विद्धमान होनी चाहिए। टीम के सभी सदस्यो को संवेद रूप से इस हेतु प्रयत्नशील होना चाहिए।

४. टीम का नेतृत्व– टीम का नेतृत्व अत्यधिक सकारात्मक होना चाहिए। नेतृत्वकर्ता को लक्ष्य की समझ होनी चाहिए, टीम के सदस्यों की क्षमताओं का आंकलन होना चाहिए, निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु क्या प्रयास होने चाहिए इसकी समझ होनी चाहिए, किस व्यक्ति को क्या ज़िम्मेदारी देनी है उसकी समझ भी होनी चाहिए तथा टीम के समस्त व्यक्तियों से व्यक्तिगत जुड़ाव भी होना चाहिए।

५. कार्य स्थल का वातावरण – कार्य स्थल का वातावरण ऐसा होना चाहिए की वह टीम भावनाओं को विकसित होने में मदद करे। आपसी दुराग्रह एक दूसरे से ऊँच – ओर नीच की भावना रखना तथा गला–काट प्रतिस्पर्धा रखना अच्छे कार्य–स्थल के वातावरण को निर्मित करने से रोकते हैं। कार्य–स्थल पर सकारात्मकता तथा अच्छे कार्यों के प्रति तथा अच्छे विचारों के प्रति रूझान रखने से ही वातावरण बेहतर होता है और बेहतर वातावरण में ही टीम निर्माण भी हो सकता है।

टीम निर्माण हेतु नेतृत्व गुण

प्रभावी टीम निर्माण करने हेतु नेतृत्वकर्ता के पास भी कुछ विशेष गुण होने चाहिए अच्छे नेतृत्वकर्ता के द्वारा टीम निर्माण निम्नलिखित गुणों के आधार पर ही संभव है :–

१. टीम का नेतृत्वकर्ता व्यक्ति हमेशा लक्ष्य की ओर दृष्टि रखता है तथा टीम को उस ओर ले जाता है।

२. वह एक अच्छे वातावरण को निर्मित करने हेतु हर संभव प्रयास करता है ताकि टीम के सदस्य बेहतर अर्न्तसंबंध रख सकें।

३. टीम का नेतृत्वकर्ता व्यक्ति प्रत्येक सदस्य में विश्वास की भावना अर्जित करता है, उन्हें सम्मानजनक जिम्मेदारियां देता है तथा उनका मनोबल बढ़ाकर रखता है।

४. टीम का नेतृत्वकर्ता व्यक्ति कार्य में दक्ष होता है तथा कार्य से संबंधित समस्त पहलुओं पर परिपक्व ज्ञान रखता है ताकि वह टीम को दिशा–निर्देश दे सकें।

५. टीम का नेतृत्वकर्ता विभिन्न कार्यों को करने के समय कार्यों की वरीयता का ध्यान रखता है कि किस कार्य को पहले करना है और अधिक महत्व देना है और किस कार्य को अपेक्षाकृत कम महत्व देना है।

६. टीम का नेतृत्वकर्ता व्यक्ति हमेशा निष्पक्ष रहता है तथा योग्य टीम सदस्यों को पुरस्कृत करता है साथ ही जो सदस्य पिछड़ जाते है उन्हे आगे बड़ने के लिए प्रेरित करता है और सबको एक साथ लेकर चलता है।

पुलिस में नेतृत्व तथा टीम निर्माण

पुलिस कार्य के दौरान नेतृत्व क्षमता जहां एक महत्वपूर्ण सॉफ्ट स्किल है वही टीम निर्माण का ज्ञान होना भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। पुलिस का समस्त कार्य टीम के माध्यम से ही समूह में ही हो पाता है। अतः पुलिस में संगठन तथा समूह का अत्यधिक महत्व है। वर्दीधारी बल होने के कारण संगठन तथा समूह के प्रति असीम वफादारी तथा नेतृत्वकर्ता के लिए सम्पूर्ण सम्मान दिये जाने पर पुलिस के प्रशिक्षण में अत्यधिक ज़ोर दिया जाता है। पुलिस के अनुशासन को बनाये रखने हेतु ऐसे पुलिसकर्मियों को दंडित भी किया जाता है जो समूह की भावनाओं से बाहर जाते हैं अथवा नेतृत्वकर्ता का निरादर करते हैं। इसलिए पुलिस में टीम भावना तथा नेतृत्व के सम्मान पर बल दिया गया है। पुलिस के कार्य के दौरान एसी अनेकों विषम परिस्थितियां आती हैं जब वह एक संगठित समूह के रूप में ही बेहतर कार्य कर पाते हैं।

इस संबंध में यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि पुलिस का संगठन तथा सामुहिक कार्य टीम भावना के लिए आवश्यक है परंतु एक प्रजातांत्रिक व्यवस्था में कार्य करने वाली पुलिस के लिए यह जानना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि पुलिस का यह सामुहिक कार्य संवैधानिक दायरे में रहे तथा नैतिक मापदंडों की सीमा को पार न करें। समूह के रूप में रहने का यह अर्थ नही है कि यदि पुलिस का एक कर्मी कोई मानवअधिकार हनन अथवा अनैतिक कृत्य करे तो सम्पूर्ण समूह के सदस्य अपनी 'टीम भावना' का परिचय देते हुए उसकी गलती को छिपाने का प्रयास करे अथवा उसे निर्दोष साबित करे। यह आवश्यक है कि पुलिस में टीम भावना हमेशा रहे परंतु वह उच्च नैतिक तथा संवैधानिक मापदंडो से परिपूर्ण रहे। इसके साथ यह भी आवश्यक है कि पुलिस का नेतृत्व भी उच्च संवैधानिक मापदंडो को हमेशा दृष्टिगत् रखते हुए ही टीम को विकसित करे तथा टीम को नियंत्रित करे क्योंकि तभी प्रजातांत्रिक मूल्यों की कसौटी पर पुलिस अपनी सेवाएं जनता को सफलतापूर्वक देने में सक्षम सिद्ध होगी।

–विनित कपूर,
ए.आई.जी.,
मध्यप्रदेश पुलिस

संज्ञय अपराधों में इंक्वायरी के बग़ैर एफ.आई.आर. दर्ज करना अनिवार्य

उच्चतम न्यायालय के ५ जजों की एक संवैधानिक खंडपीठ ने १३ नवंबर को *ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एंव अन्य (डब्ल्यू.पी. (क्रिमनल) न. 2008 का 68)* के केस में : इस मुद्दे पर कि, क्या पुलिस अधिकारी, किसी संज्ञय अपराध की सूचना मिलने पर द.प्र.सं. की धारा १५४ के अंतर्गत एफ.आई.आर. दर्ज करने के लिए बाध्य है या इससे पहले इस सूचना की सत्यता जांचने के लिए उसे 'प्राथमिक इंक्वायरी' करने का अधिकार है?

उच्चतम न्यायालय ने, पारा १११ में अपने निर्णय को समाप्त करते हुए निम्नलिखित निर्देश दिया :–

उपरोक्त परिचर्चा को ध्यान में रखते हुए, हम यह मानते हैं कि :

१. संहिता के अंतर्गत एफ.आई.आर. दर्ज करना अनिवार्य है, अगर सुचना से किसी संज्ञय अपराध के घटित होने की जानकारी मिलती है तब किसी प्राथमिक इंक्वायरी की आज्ञा नहीं है।

२. अगर प्राप्त सूचना से किसी संज्ञय अपराध का पता नहीं लगता है लेकिन, इंक्वायरी की आवश्यकता के बारे में बतलाता है, एक प्राथमिक इंक्वायरी की जा सकती है केवल यह निश्चित करने के लिए कि इससे किसी संज्ञय अपराध का पता तो नहीं लगता है।

३. अगर इंक्वायरी से किसी संज्ञय अपराध के बारे में पता लगता है, एफ. आई.आर. अवश्य ही दर्ज की जानी चाहिए। उन केसों में जहां प्राथमिक जांच का अंत, केस को बंद करने से होता है, ऐसी समाप्ति की एक प्रति पहले सूचनादाता को तुरंत और अधिक से अधिक एक सप्ताह के भीतर भेजी जानी चाहिए। इसमें आगे कार्यवाही न करने और समाप्ति का संक्षिप्त कारण भी बतलाना चाहिए।

४. अगर संज्ञय अपराध का पता लगता है, पुलिस अधिकारी अपराध दर्ज करने के अपने कर्तव्य से बच नहीं सकता। उन पुलिस अधिकारियों के विरूद्ध कार्यवाही प्रारंभ की जानी चाहिए जो संज्ञय अपराध की सूचना के बावजूद एफ.आई.आर. नहीं दर्ज करते हैं।

५. प्राथमिक इंक्वायरी का विषय क्षेत्र सूचना की सच्चाई या कुछ और का सत्यापन करना नहीं है बल्कि केवल यह तय करने के लिए हैं कि–क्या सूचना से किसी संज्ञय अपराध के घटित होने का पता लगता है?

६. किन केसों में और किस प्रकार की प्राथमिक जांच की जानी है, प्रत्येक केस के तथ्यों पर निर्भर करता है।

जिन केसों की श्रेणियों में प्राथमिक जांच की जा सकती है, वे निम्नलिखित हैं:

क) वैवाहिक झगड़े / पारिवारिक झगड़े

ख) वाणिज्यिक अपराधों में

ग) चिकित्सीय लापरवाही के केसों में

घ) भ्रष्टाचार के केसों में

ङ) ऐसे केस जिसमें आपराधिक अभियोजन को शुरू करने में, असाधारण तरीके से विलंब / ढ़ीलाई दी गई हो उदाहरण स्वरूप, केस दर्ज कराने में ३ महीने से अधिक विलंब किया गया हो और संतोषजनक व्याख्या भी न की गई हो।

ऊपर बतलाए गए केवल उदाहरण हैं न कि प्राथमिक इंक्वायरी का अधिकार देने वाली पूर्ण शर्तें हैं।

७. आरोपी और शिकायतकर्ता के अधिकारों की सुरक्षा को सुनिश्चित करते हुए, प्राथमिक इंक्वायरी की समय–सीमा निर्धारित की जानी चाहिए और किसी भी केस में इसे ७ दिनों से अधिक समय तक नहीं जारी रखना चाहिए। इस विलंब के तथ्य और कारणों को जेनरल डायरी में दर्ज किया जाना चाहिए।

८. क्योंकि जेनरल डायरी / स्टेशन डायरी / डेली डायरी थाने में प्राप्त सभी सूचनाओं का रिकॉर्ड होता है, हम निर्देश देते हैं कि संज्ञय अपराधों से जुड़ी सभी सूचनाओं को चाहे उसमें एफ.आई.आर. दर्ज हुआ हो या जिसमें इंक्वायरी की गई हो, बताई गई डायरी में आवश्यक रूप से सावधानीपूर्वक उल्लेख किया जाना चाहिए और जैसा कि ऊपर कहा गया एक प्राथमिक इंक्वायरी करने के निर्णय के बारे में भी इसमें लिखा जाना चाहिए।

आशा है, कम से कम इस निर्णय के बाद पुलिस अधिकारियों को एफ.आई.आर. दर्ज करने की अनिवार्यता के बारे में उचित समझ बन गई होगी और अब वह शिकायतकर्ताओं की शिकायतों पर बेहतर तरीके से कार्यवाही कर सकेंगे।

–प्रस्तुति : ज़ीनत मलिक

क्या आप जानते हैं?

इस स्तम्भ में इस बार हम *यौन हिंसा से बच्चों की सुरक्षा अधिनियम २०१२ की धारा ३९ के* अंतर्गत राज्य के महिला एंव बाल विकास मंत्रालय द्वारा बनाये गये मॉडल निर्देशों के पुलिस से सम्बद्ध भाग को आपकी सूचना और ज्ञान के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं।

पृष्ठभूमि और परिचय

उपरोक्त कानून का कार्यान्वयन दूसरी कई अन्य एजेंसियों की भागीदारी द्वारा ही सम्भव है। उक्त कानून की धारा ३६ के अंतर्गत सरकार को, बच्चों की मुकदमा पूर्व और पश्चात सहायता करने के लिए आवश्यक विभिन्न व्यवासायिकों और विशेषज्ञों तथा गैर–सरकारी संगठनों की सेवाओं को प्राप्त करने के लिए दिशा–निर्देश बनाने की ज़रूरत है। निम्नलिखित दिशा–निर्देश, मॉडल दिशा–निर्देश है जो केन्द्र सरकार द्वारा बनाये गये हैं इस पर आधारित विशिष्ट दिशा–निर्देश राज्यों द्वारा अपनी विशेष आवश्यकताओं के अनुसार बनाए जा सकते हैं।

बहु क्षेत्रीय पद्धति

जिन बच्चों के साथ यौन शोषण हुआ है वह अपने अनुभव के कारण न केवल चोट ग्रस्त हैं बल्कि आगे और दोबारा न्याय प्रदान करने वाली यंत्रावली द्वारा शोषण के लिए संवदेनशील भी हैं।

बाल पीड़ितों और उनके परिवारों के साथ बाल संवेदी तरीके से व्यवहार करने के लिए स्पष्ट निर्देशों का अभाव, अदालती प्रक्रिया के दौरान मुकदमे की गुणवत्ता, सबूत तथा मुकदमे को प्रभावित करता है। यदि अप्रशिक्षित पुलिस या अदालत बच्चे से व्यवहार करे तब ऐसे केसों में बच्चे से लगातार सवाल पूछा जाता है और जांच पड़ताल की जाती है, और इससे बच्चों को दुखद हादसे को बार–बार जीना पड़ता है। इसके अलावा, पीड़ित बच्चा और उसके परिवार को उचित एजेंसियों द्वारा ठीक स्तर पर कानूनी सहायता नहीं मिल पाती है। हम यहां निर्देश पुस्तिका के केवल उन अध्यायों को प्रस्तूत करेंगे जो पुलिस के लिए उपयोगी हो। यह इसका पहला भाग है।

अध्याय–१ यौन अपराधों से बच्चों की सुरक्षा अधिनियम का संक्षिप्त विवरण

उक्त कानून पुलिस पर जांच प्रक्रिया के दौरान बच्चे के रक्षक की भूमिका निभाने की ज़िम्मेदारी भी डालती है। इसलिए, बाल यौन शोषण की शिकायत प्राप्त करने वाले पुलिसकर्मी पर बच्चे की तत्काल सुरक्षा और देख–रेख के इंतज़ाम करने की ज़िम्मेदारी डाली गई है, जैसे कि आपातकालीन चिकित्सीय ईलाज उपलब्ध कराना और अगर आवश्यकता हो, बच्चे को सुरक्षा गृह में रखना। पुलिस को समस्या की जानकारी २४ घंटों के भीतर बाल कल्याण समिति (ब.क.स.) को भी देनी होती है।

अध्याय–२ मुकदमा पूर्व और पश्चात बच्चे की सहायता के लिए व्यवासायिकों और विशेषज्ञों के उपयोग के लिए सामान्य सिद्धान्त

बच्चों के विरूद्ध यौन अपराधों से जुड़े केसों में पालन किये जाने वाले कुछ मूल सिद्धांतो को विभिन्न अंतरराष्ट्रीय लेखपत्रों और यौन अपराधों से बच्चों की सुरक्षा कानून के प्रस्तावना में लिखा गया है। मुकदमा पूर्व और उसके पश्चात बच्चे की सहायता करने वाली राज्य सरकार, पुलिस, ब.क.स., विशेष अदालत और अन्य सरकारी पदाधिकारियों तथा गैर सरकारी संगठनों तथा व्यवासायिक व विशेषज्ञों को आवश्यक रूप से इनका पालन करना होगा।

यह सिद्धांत हैं:–

क) जीवन जीने और उत्तरजीविता का अधिकार– प्रत्येक बच्चे को जीवन और उत्तरजीविता और हर प्रकार के मुसीबत से बचाव, शोषण या लापरवाही जिसमें शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, मानसिक, भावनात्मक शोषण और लापरवाही सम्मिलित है, और सुव्यवस्थित शारीरिक, मानसिक, अध्यात्मिक, मौलिक और सामाजिक विकास के लिए स्तरीय रिहाईश का अधिकार है। एक बच्चे के केस में जिसे आघात पहुंचा है, बच्चे को स्वस्थ्य विकास लाभ लेने योग्य बनाने के लिए हर सम्भव कदम उठाया जाना चाहिए।

ख) प्रत्येक बच्चे के सर्वश्रेष्ठ हित पर प्राथमिक रूप से विचार किया जाना चाहिए। जिसमें संरक्षण और सुव्यवस्थित विकास का अधिकार सम्मिलित है। बच्चे के सर्वश्रेष्ठ हित की सुरक्षा के अधिकार का अर्थ न केवल न्याय निष्पादन प्रक्रिया के दौरान बच्चे को कठिनाई और दोबारा शिकार होने से बचाना है बल्कि इस प्रक्रिया में योगदान करने के लिए उसकी क्षमता को बढ़ाना भी है। दूसरी बार शिकार होने से रोकने का मतलब सीधे 'अत्याचार' अर्थात आपराधिक कार्य को नहीं समझना चाहिए बल्कि यह विभिन्न संस्थानों और व्यक्तियों का पीड़ित के प्रति व्यवहार से होता है।

ग) सम्मान और सहानुभूति के व्यवहार का अधिकार– न्याय प्रक्रिया के दौरान बाल पीड़ितों के साथ देखरेख व संवेदनशील तरीके से किया जाना चाहिए, उनकी व्यक्तिगत स्थिति तत्काल आवश्यकता, आयु, लिंग, विकलांगता और परिपक्वता के स्तर और उनकी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक अखंडता का पूरा आदर किया जाना चाहिए, बच्चे के निजी जीवन में हस्तक्षेप केवल न्यूनतम आवश्यक तक सीमित रखना चाहिए और जो आवश्यक हो केवल उतना ही जानने पर आधारित होना चाहिए। इस बात की भी कोशिश की जानी चाहिए कि बच्चे का साक्षात्कार करने वाले व्यवासायिकों की संख्या कम हो। उसी के साथ यह भी देखना आवश्यक है कि उच्च स्तरीय साक्ष्यों को एकत्रित किया जा सके ताकि न्याय प्रक्रिया का निष्पक्ष और न्यायसंगत परिणाम निकल सके। बच्चे को और अधिक कठिनाई से बचाने के लिए साक्षात्कार, परिक्षण और अन्य प्रकार के जांच को प्रशिक्षित व्यवासायिकों द्वारा कराया जाना चाहिए जो एक संवेदनशील और पूर्ण तरीके से और बाल मैत्रीपूर्ण वातावरण में काम करें। सभी अंतः क्रिया बच्चे द्वारा बोली और समझी जाने वाली भाषा में की जानी चाहिए। चिकित्सीय परीक्षण का आदेश केवल तब ही दिया जाना चाहिए जब केस के जांच के लिए इसकी आवश्यकता हो और बच्चे के सर्वश्रेष्ठ हित में हो और न्यूनतम हस्तक्षेप करने वाला हो।

–प्रस्तुति : ज़ीनत मलिक

(शेष अगले अंक में)

पृष्ठ १ का शेष .....

है। पुलिस कानून की कृत है, वह कानून को अपने हाथ में कैसे ले सकती है? हमारे मुख्य मंत्री एक वाक्य प्रायः कहते हैं जिसे पुलिस को मानना चाहिए 'निर्दोषों को फंसाना नहीं और दोषियों को छोड़ना नहीं' और अगर इसमें समय लगता है तो लगने दें। जब आपने इस सेवा का चयन किया था क्या तब आपको इसकी आवश्यकताओं की जानकारी नहीं थी? पुलिस को यह समझना होगा कि वह न्यायपालिका नहीं हैं, उनका काम न्याय देना नहीं है बल्कि केवल अन्वेंषण करके न्यायपालिका के समक्ष अपनी रिपोर्ट को रखना है। लेकिन, यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है कि हमारे देश में पुलिस की भूमिका को गलत तरीके से देखा जाता है समाज के द्वारा भी और स्वयं पुलिस के द्वारा भी, मानव न्याय देने का दायित्व उन पर है और इसी आशा से दबाव उत्पन्न होता है। यह समझना होगा कि पुलिस केवल एक सेवा है जैसे किसी भी अन्य एजेंसी सेवा प्रदान करती है, न्याय प्रदान करने का काम अदालत का है। अतः किसी भी अनुसंधान के लिए गैर कानूनी तरीका अपनाना पूरी तरह अस्वीकार्य होना चाहिए।

सर, आपके विचार में क्या कारण है कि पुलिस सुधार पर उच्चतम न्यायालय के निर्देशों का पालन नहीं हो पा रहा है?

मैं विश्वास के साथ तो नहीं कह सकता पर ऐसा प्रतीत होता है कि शायद राजनैतिक ईच्छाशक्ति की कमी है और ऐसा इसलिए भी है क्योंकि कोई भी पुलिस पर से अपने स्वामित्व को समाप्त नहीं होने देना चाहता है। राजनैतिज्ञ ही नहीं बल्कि पुलिस भी अपने लाभ के लिए इनका उपयोग करने लगी है। दोनों में पारस्परिक समझ बन गई है और दोनों अपने लाभ के लिए एक दूसरे का उपयोग करने लगे हैं।

आपके विचार

महोदया,

लोक पुलिस के सितम्बर महीने के अंक में प्रकाशित पुलिस समाचारों के अंतर्गत एक समाचार बेहद सुखद लगा। ओडिशा के वर्षों पुराने पुलिस कानून से छुटकारा पाने से सम्बन्धित समाचार, जिसके बारे में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि "देर आए, दुरूस्त आए" क्योंकि इसके अंतर्गत *प्रकाश सिंह केस* में उच्चतम न्यायलय द्वारा दिये गये विभिन्न निर्देशों का समावेश करने का प्रयत्न किया गया है। हम आशा करते हैं कि सभी राज्य स्थानीय स्तर पर पुलिसिंग व्यवस्था से सम्बन्धित अपने कानूनों की समीक्षा करें और प्रकाश सिंह के निर्देशों के अनुसार इसमें आवश्यकतानुसार संशोधन भी करें।

मेरे विचार में पुलिस अपना काम एक अच्छे सेवाप्रदाता के रूप में कर सके इसके लिए सबसे अधिक आवश्यक है कि पुलिस की भूमिका का विभाजन किया जाए अर्थात जांच करने के लिए अलग और अन्य कार्यों के लिए अलग पुलिस होनी चाहिए। ऐसा करने से केसों के हल करने के दर में भी व्यापक बढ़ोतरी होगी और परिणामस्वरूप जनता में संतुष्टि का स्तर भी बढ़ेगा।

निरीक्षक, पटना पुलिस
सदस्य, बिहार पुलिस

संपादिका जी,

सादर प्रणाम!

मुझे *लोक पुलिस* पत्रिका का ४२वां अंक पढ़ने को मिला। हांलाकि, मैंने पत्रिका दो–तीन महीने के बाद देखी लेकिन श्री देवराजन जी के साक्षात्कार का शीर्षक रूचिकर लगा और पढ़ने के बाद मैं भी यह कह सकता हुँ कि पुलिसकर्मियों को अवश्य ही सेवाप्रदाता का दृष्टिकोण अपनाना चाहिए क्योंकि यह जनता के लिए हितकर होगा।

इसके अलावा इस अंक में *'साम्प्रदायिक दंगे और पुलिस'* नामक लेख भी ज्ञानवर्धक था। कई बार दंगों को भड़कने से उचित प्रतिरोधक कार्यवाईयों द्वारा रोका जा सकता है लेकिन, ऐसा हमेशा हो पाये यह सम्भव नहीं। दंगा या उसके पश्चात पुलिस निष्पक्ष रहकर अपने कर्तव्यों का पालन करने की कोशिश कर सकती है, केवल यही उसकी वश में है।

साथ ही, दिल्ली में गवाह निक्षेपण कक्ष की स्थापना के बारे में यह कहना चाहता हुँ कि गवाहों को लगातार सुरक्षा प्रदान कराना तो किसी भी संगीन आपराधिक मामले में आवश्यक है और ऐसे निक्षेपण कक्ष छोटे शहरों और कस्बों में भी शीघ्र बनाये जाने चाहिए।

धन्यवाद!

हेड कांस्टेबल, देहरादुन
सदस्य, उत्तराखण्ड पुलिस

पुलिस समाचार- हर कोने की हलचल

लोकायुक्त ने पीड़ित का रिकॉर्ड दर्ज किया

कर्नाटक के लोकायुक्त ने पुलिस क्रूरता के विरूद्ध आई.टी. प्रशिक्षक की शिकायत दर्ज की। लोकायुक्त भास्कर राव और ए.डी.जी.पी., लोकायुक्त एच.एन. सत्यानारायण राव ने पीड़ित ३८ वर्षीय राजेश से अस्पताल में जाकर मुलाकात की और उसका बयान दर्ज किया। राजेश को १६ अक्टूबर को बानरघत्ता थाने के सब इंस्पेक्टर कुमारास्वामी ने क्रिकेट के बल्ले से दाहिने टखने पर मारा था जिस कारण उसकी हड्डी टूट गई थी। अपनी शिकायत में राजेश ने आरोप लगाया कि उस पर इसलिए हमला किया गया था क्योंकि उसने पुलिसवालों को, बानराघत्ता रोड पर झगड़ रहे दो आदमियों को मारने का विरोध किया था। उसने कहा कि उसे बानरघत्ता थाने में ले जाया गया और उसकी पिटाई की गई।

बानरघत्ता निवासी राजेश पर, कामूकतापूर्ण उत्पीड़न, घर में अतिक्रमण करने, नुकसान पहुंचाने, शांति भंग करने की मंशा से सुविचारित अपमान और आपराधिक धमकी देने का केस दर्ज किया गया था जो अब ज़मानत पर था।

सब–इंस्पेक्टर कुमारास्वामी को उस थाने से हस्तांतरित कर दिया गया है। बैंगलोर देहात के एस.पी. बी.रमेश ने इस मामले में कहा, "जांच चल रही है और एक बार इसकी रिपोर्ट तैयार हो जाए, हम दोषी पाये जाने वालों पर उचित कार्यवाही करेंगे।" बताया जाता है कि इस केस का संज्ञान कर्नाटक मानव अधिकार आयोग ने भी लिया है।

उपरोक्त केस पुलिस की बर्बरता का सटीक उदाहरण है – किस प्रकार यदि पुलिस किसी के विरूद्ध हो जाए तब आरोपों के जाल में फंसा सकती है। वहीं, अच्छी बात है कि पीड़ित की शिकायत दर्ज करने के बाद स्वंय ए.डी.जी.पी., उसका बयान दर्ज करने के लिए अस्पताल तक गये, इस तथ्य से पुलिस व्यवस्था को संभालने वाली शक्तियों के अस्तित्व का आभास होता है और यह आम जनता को आशा देती है कि ग़लत करने वालों के विरूद्ध कार्यवाही भी होगी और पीड़ित को न्याय भी मिलेगा।

(सौजन्य : टाईम्स ऑफ इंडिया डॉट इंडिया टाईम्स डॉट कॉम, २६ अक्टूबर २०१३)

चिकित्सीय जांच या अपमान का नया स्वरूप?

पश्चिम बंगाल ने, पिछले वर्ष सितम्बर २०१३ में उच्चतम न्यायालय के आदेश के बाद बलात्कार पीड़ितों के चिकित्सीय जांच के लिए सक्रिय प्रोटोकोल को मानकित किया है।

३० अक्टूबर को पास किये गये प्रोफोरमा में 'दो ऊंगली परीक्षण', जोकि यौन उत्पीड़न के पीड़ितों के लिए जांच का सबसे असभ्य तरीका था, हटा दिया गया है, इसकी आलोचना वर्मा समिति की रिपोर्ट में भी की गई थी।

हांलाकि यह एक सराहनीय प्रयत्न है लेकिन असली मकसद तब पूरा होगा जब यौन उत्पीड़न के उत्तरजीवियों के सम्मान के लिए इस जांच में पड़ी दरारों को भरा जाए। डॉक्टरों और नर्सों को संक्षिप्त वैज्ञानिक परीक्षण करने और साक्ष्यों को एकत्रित करने के लिए अचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

हांलाकि, इस प्रोफोरमा में कुछ विचित्र प्रश्न भी पूछे गये हैं जैसे कि उत्तरजीवी की शारीरिक बनावट और ज़ख़्मों की उपस्थिति, हाइमन प्रसूति का इतिहास, शरीर का वज़न आदि।

उक्त प्रफोरमा में हाइमन प्रसूति का इतिहास और उत्तरजीवी के वज़न के विवरण से उसे न्याय पाने में किस प्रकार सहायता मिलेगी यह समझ पाना असम्भव है। जबकि पश्चिम बंगाल मानव अधिकार आयोग के पूर्व अध्यक्ष सेवानिवृत न्यायाधीश चित्तातोश मुखर्जी के अनुसार 'ये पीड़ित के हित में है कि चिकित्सीय जांच पूर्ण हो। या, फिर संदिग्ध छूट जाएगा।'

पीड़िता के इस प्रकार के जांच से असभ्यता का एक और उदाहरण मिलता है और उसका अपमान ही होता है। इसलिए प. बंगाल सरकार को इस प्रफोरमा को तुरंत दोहराना चाहिए।

(सौजन्य : टाईम्स ऑफ इंडिया डॉट इंडिया टाईम्स डॉट कॉम ६ नवंबर २०१३)

प्रशासन को नसीहत : यदि आदेश अस्वीकार्य, उच्चतम न्यायालय जाएं

चंडीगढ़ प्रशासन द्वारा पुलिस शिकायत प्राधिकरण की शक्तियों के विरूद्ध दी गई चुनौती में कोई बल न देखते हुए, पंजाब व हरियाणा उच्च न्यायालय ने ७ नवंबर को प्रशासन द्वारा दायर याचिका पर सुनवाई करने से इंकार कर दिया।

इस आदेश के द्वारा उच्च न्यायालय ने पुलिस शिकायत प्राधिकरण के अधिकारक्षेत्र में हस्तक्षेप करने से इंकार कर दिया और प्रशासन को कहा कि अगर वह इसके किसी आदेश से आहत हैं तब उच्चतम न्यायालय जाएं।

इस आदेश का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है क्योंकि पिछले वर्ष अक्टुबर में प्रशासन ने याचिका दायर करके प्राधिकरण को दंतहीन बनाये जाने के अपनी अधिसूचना को वापस न लेने के विरूद्ध उच्च न्यायालय में याचिका दायर की थी। लेकिन, अदालत ने इसे अपनी अधिसूचना को वापस लेते हुए *प्रकाश सिंह के केस* में उच्चतम न्यायालय के इस संदर्भ में निर्देश के अनुसार प्राधिकरण के निर्देशों को बाध्यकारी बनाने का आदेश दिया था।

इसके अलावा जैसा कि अक्टुबर २०१३ में उच्च न्यायलय ने प्राधिकरण के १ अक्टुबर को सदस्यों का कार्यकाल समाप्त होने के कारण नये सदस्यों की नियुक्ति का आदेश दिया था, प्रशासन ने ७ नवंबर को प्राधिकरण के तीन नये सदस्यों की नियुक्ति भी कर ली है। पूर्व केन्द्र शासन सलाहकार प्रदीप मेहरा को पुलिस शिकायत का अध्यक्ष बनाया गया है। हांलाकि, प्रदीप मेहरा की कई विवादों में घिरे होने के कारण जनता में साफ़ छवि नहीं है। ऐसे में उचित होता कि पुराने सदस्यों को ही पुनः नियुक्त किया जाता। लेकिन, जब प्रशासन उनके निर्णयों से इस हद तक आहत है कि इसने इसकी शक्ति को छीनने के लिए उच्च न्यायालय तक का दरवाज़ा खटखटा लिया, ऐसे में इसके संचालकों से मुक्ति पाने के इस अवसर को प्रशासन कैसे खो सकती थी।

देखना होगा कि यह नव नियुक्त प्राधिकरण किस प्रकार अपने दायित्वों का निवर्हन करती है? यह शंका अवश्य ही बनी रहेगी कि कहीं यह व्यवहारिक रूप से दंतहीन ही न बन जाए।

दूसरी ओर, उच्चतम न्यायालय ने अपने २००६ के दिशा–निर्देशों के उचित कार्यान्यन के बारे में कहा है कि वह हर सम्भव प्रयास करेगी ताकि सुधार की हवा देश भर के पुलिस विभाग में बुनियादी सुधार ला सके।

ऐसे में आंध्रा प्रदेश ने तो पुलिस के लिए नया कानून बनाया ही नहीं है लेकिन उन १५ अन्य राज्यों को क्या करें जहां नये पुलिस कानून बनाये गये हैं लेकिन वे उच्चतम न्यायालय के अधिदेश को पूरा ही नहीं करते हैं। ७ वर्ष बीत चुके हैं लेकिन उच्चतम न्यायालय के निर्देशों को न मानने की मंशा प्रायः सभी राज्यों में स्पष्ट दिखाई पड़ती है। ऐसे में, 'पुलिसिंग में सुधार' के लिए विश्वास के परे विश्वास बनाए रखने के अलावा कोई विकल्प नहीं दिखाई पड़ता।

(इंडियन एक्प्रेस डॉट कॉम, ७ नवंबर २०१३)

आन्ध्र प्रदेश: पुलिस सुधार से कोसों दूर

भारतीय राज्यों पर एक अंतरराष्ट्रीय संगठन द्वारा जारी रिपोर्ट में बताया गया है कि पुलिस सुधार पर उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गये ७ दिशा–निर्देशों में से एक का भी पालन आंध्रा प्रदेश में नहीं किया गया है।

यह रिपोर्ट, देश भर में पुलिसिंग में सुधार करने के लिए २००६ में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गये निर्देशों के विभिन्न राज्यों द्वारा आज्ञापालन के स्तरों की तुलना करता है।

दिये गये ७ दिशा–निर्देश हैं – राज्य सुरक्षा आयोग, पुलिस संस्थापना बोर्ड, पुलिस शिकायत प्राधिकरण का गठन, डी.जी.पी. एंव अन्य अधिकारियों का कार्यकाल निश्चित करना, कानून–व्यवस्था तथा जांच के लिए अलग–अलग शाखाओं का गठन करना और पुलिस अधिनियम का मसौदा तैयार करना।

इन सब में से, आंध्रा प्रदेश ने एक राज्य सुरक्षा आयोग का गठन केवल काग़ज़ों पर किया है और अन्य अधिकारियों के कार्यकाल को २००७ में जारी एक सरकारी आदेश के अनुसार निश्चित किया जाता है। सरकार द्वारा पुलिस अधिनियम का मसौदा अब भी तैयार किया जाना बाकी है। हांलाकि, निर्देशों के अनुसार सरकारी आदेश द्वारा पुलिस संस्थापना बोर्ड और पुलिस शिकायत प्राधिकरण स्थापित करने का आदेश जारी किया गया है, लेकिन यह दोनों ही निकाय दंतहीन और शक्ति हीन हैं।

पूर्व शीर्ष पुलिस अधिकारी और विशेषज्ञ यह मानते हैं कि राजनैतिक प्रतिरोध ओर पुलिस को अधिक शक्ति देने से इंकार के कारण निर्देशों का पालन नहीं हो पाया है। विशेषज्ञों ने यह भी कहा कि राज्य सरकार द्वारा नये कानून बनाने में विफल होने का मतलब यह भी है कि बल प्राचीन *पुलिस अधिनियम १८६१* के अनुसार काम करती रहेगी।

हांलाकि, पूर्व डी.जी.पी. स्वरनजीत सेन ने कहा, "राजनैतिक वर्ग में उच्चतम न्यायालय के दिशा–निर्देशों के कार्यान्वयन में स्पष्ट रूप से बहुत विकलता है क्योंकि उनकी नौकरशाही एंव राजनैतिक हस्तक्षेप के अवसर समाप्त हो जाएंगे। हांलाकि, यह एक ग़लतफहमी है कि जब निर्देश कार्यान्वित हो जाएंगे, पुलिस को सर्वोच्च शक्ति प्राप्त हो जाएगी। वास्तव में, वह अधिक शक्तिशाली न्यायिक जांच का विषय बन जाएगी।"

जब आन्ध्र प्रदेश के प्रमुख सचिव (गृह) से पूछा गया कि आन्ध्र प्रदेश क्यों इस कार्यान्वन में बूरी तरह विफल रहा है, उन्होंने इस विषय पर टिप्पणी करने से इंकार कर दिया।

इस रिपोर्ट में केरल को, इसकी पूर्व वैधानिक परामर्शक प्रक्रियाओं के लिए मॉडल राज्य बताया गया है। २०११ में, *केरल पुलिस अधिनियम* के संशोधन में बड़े पैमाने पर लोक सहभागिता को अपनाया गया था जिसमें सामाजिक संगठनों द्वारा दिये गये फीडबैक भी शामिल है।

सभी राज्यों की ही तरह आन्ध्र प्रदेश से भी पुलिस सुधार पर निर्देशों के पालन करने की अपील और आशा ही की जा सकती है।

(सौजन्य : टाईम्स ऑफ इंडिया डॉट इंडिया टाईम्स डॉट कॉम, १४ नवंबर २०१३)

सी.एच.आर.आई., नई दिल्ली कार्यालय
प्रधान सम्पादक : ज़ीनत मलिक, बी–११७, दूसरा तल, सर्वोदय एनक्लेव, नई दिल्ली–११००१७, भारत
टेली : ९१ ११ ४३१८ ०२००, फैक्स : ९१ ११ २६८६४६८८, info@humanrightsinitiative.org, www.humanrightsinitiative.org